# मीड़िया और समसामयिक समीकरणः एक विश्लेषण

*डॉ. पंकज बासोतिया

नेहरू जी ने भूतकाल और भविष्य के संबंध की व्याख्या करते हुए एक जगह कहा है कि ''नए भविष्य की कल्पना एवं अतीत का पुन्रन्वेषण, एक ही संकल्प के दो भिन्न नाम, दो भिन्न रूप हैं।'' यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि पश्चिम के गहरे सांस्कृतिक वर्चस्व के कारण, जिसका एक बड़ा कारण और साधन, आधुनिक और न्यू मीडिया पर, उसकी तकनीक, पर पश्चिम का पूरा वर्चस्व है, हम हमारी अपनी भारतीय समय की अवधारणा से पूरी तरह कट चुके है।

चूंकि इस सेमिनार के मुख्य विषय में ''समसायिक'' पर काफी बल दिया गया है अतः सबसे पहले इस पर विचार करना आवश्यक जान पडता है कि 'समय' और 'काल' पर विचार अनेक दृष्टियों से संभव है।

जहां पश्चिमी दृष्टि के अनुसार 'समय' का विभाजन भूत, वर्तमान एवं भविष्य को परस्पर एक दूसरे से पूर्णतः काटकर या विभाजित करके स्पदपमत आधार पर किया जाना संभव है वहीं भारतीय सांस्कृतिक दृष्टि के अनुसार, समय की भी ब्यतनबसंत व्याख्या किया जाना संभव है और वह भी एक सापेक्षिक (Relative) सिद्धांत है न कि निरपेक्ष। इस व्याख्या के अनुसार, भूत, वर्तमान एवं भविष्य को कभी भी एक–दूसरे से पूर्णतया संपृक्त या पृथक नहीं किया जा सकता। ये तीनों परस्पर एक –दूसरे के साथ इतनी अधिक गहराई से गुथे हुए हैं कि एक को समझे बिना किसी दूसरे को समझ पाना संभव नहीं है।

इसलिए, आज की तारीख में, ''मीडिया और समसामयिक समीकरण'' को समझने के लिए मैं अपनी बात शुरू करना चाहता हूँ, थोडा सा पीछे जाकर, Late 820's और early 90's के समय को याद करते हुए। इन latge 80's और early 90's में जिन तीन–चार मुद्दों पर सबसे अधिक सार्वजनिक बहस थी उनमें भ्रष्टाचार के अलावा सबसे अधिक ज्वलन्त मुद्दे थे–

1. कम्प्यूटराइजेशन
2. ग्लोबलाइजेशन ंदक स्पइमतंसप्रंजपवद
3. रामजन्म भूमि और आरक्षण विरोधी आन्दोलन

और इनके साथ–साथ ही प्रसार भारती विधेयक के कारण संचार साधनों विशेषकर दूरदर्शन और आकश वाणी की स्वायत्तता को लेकर बहस जोर–शोर से चारों और हो रही थी।

रामजन्म भूमि और आरक्षण आन्दोलन दोनों को लेकर तत्कालीन मीडिया और मीडियाकर्मी दोनों ही वर्ग, धर्म और जाति के आधार पर लगभग उतने ही विभाजित थे, जितने सामान्य लोग। बाबरी मस्जिद के विध्वन्स के बाद देशभर में भडके सांम्प्रदायिक दंगों को भडकाने और उकसाने में मीडिया की भूमिका के अलावा, आरक्षण विरोधी आन्दोलन में भी जबसे दिल्ली विशविद्यालय के राजीव गोस्वामी की जलती हुई तस्वीरें India today और देश के अन्य नामी गिरामी अरबारो के तिवदज चंहम पर छपी थी। तबसे देश के लगभग सभी कोनों से 100 से भी अधिक युवाओं की

आत्महत्या ने इस नैतिक प्रश्न को उत्पन्न कर दिया था कि इस प्रकार आत्महत्या की तस्वीरों को मुख्य पृष्ठ पर छापकर, कहीं मीडिया सनसनी की खोज और तलाश में अपने नैतिक और सामाजिक उत्तरदायित्व की अवहेलना तो नहीं कर रहा। देश प्रदेश के किसी भी सामाचार पत्र पत्रिका के उस दौर के विश्लेषण यह दिखाने को पर्याप्त थे कि र्निभिकता और निष्पक्षता केवल डलजी है, जमीनी सच्चाई नहीं। किसी ने ठीक ही कहा है कि ''सच्चाई की असली परीक्षा संकटकालीन परिस्थिति में ही होती है न कि सामान्य परिस्थिति में।''

लगभग इसी समय में हुई एक वाद–विवाद प्रतियोगिता जो जयपुर के महारानी कॉलेज सभागार मे हुई थी, वह मुझे अपने विषय के कारण याद पड रही है, इस प्रतियोगिता का मुख्य विषय था; ''संचार साधनों की स्वायत्तता, स्वस्थ जनमत के निर्माण के लिए आवश्यक है।'' हालांकि कुछ समय बाद प्रसार भारती विधेयक के कारण दूरदर्शन एवं आकशवाणी सीधे सरकारी नियंत्रण एवं हस्ताक्षेप से मुक्त हो गए थे लेकिन मुझे स्पष्ट तरीके से याद है कि बहुत से लोग संशय एवं आंशका के कारण, इन संचार साधनों की पूर्ण स्वायत्ताता के विपक्ष में थे।

आज लगभग 25 साल बाद, अगर हम फिर से पीछे मुड़कर देखे तो इस संबंध में कुछ बाते स्पष्ट तौर पर कही जा सकती है –

Computerization, Globalization और Media dh autonomy इन तीनों ही बडे परिवर्तनों के बिना, हम आज के भारत की सफलता और उपलब्धियों की कल्पना भी नहीं कर सकते इन तीनो ही परिवर्तनों को लेकर तत्कालीन बुद्धिजीवियों और मीडियाजनों ने जो भी भय या आशंकाए व्यक्त भी थी वे आज र्निमूल ही प्रतीत हो रहे है।

कम्प्यूटराइजेशन और ग्लोबलाइजेशन को लेकर सबसे बडी आशंका नवीन रोजगार निर्माण के अवसरो को लेकर थी किन्तु आज वास्तविकता यह है कि हमारे युवाओं को रोजगार के सबसे अधिक अवसर इन्हीं दोनों के कारण मिले है।

लगभग इसी प्रकर के उत्साहजनक परिणाम मीडिया की स्वायत्तता के माले में हैं । मीडिया की स्वायत्तता ने कम्प्यूटराइजेशन और ग्लोबलाइजेशन के फेनोमेना को एक ऐसा complemtry और supportive base प्रदान किया हैं जिसमें किसी भी एक के बिना अन्य दोनो की कल्पना नहीं की जा सकती।

तब फिर उस समय हमारे भय और आशंका का कारण क्या था? एक सामान्य कारक तो यह है कि प्रत्येक मनुष्य या मानव समुदाय में बल्कि यहां तक कि ।दपउंस इमपदहे में भी अपने भविष्य को लेकर एक भय एवं असुरक्षा की स्वाभाविक आशंका होती है। लेकिन इसके साथ–साथ एक और बात है जो हमारे जैसी पुरानी सम्यताओं और संस्कृतियों के साथ विशेष रूप से रही हैं वह यह है कि जिन भी बडे परिवर्तनों का स्रोत आन्तरिक और स्वतः न होकर बाहरी और थोपा गया प्रतीत होता है, उनके संबंध में ये सम्भताएं हमेशा ही एक गहरी हिचक और शक का शिकार रही हैं विशेषकर वे सभ्यताएं जिन्होंने सदियों तक उपनिवेशवाद और पश्चिमी साम्राज्यवाद के दंश को झेला है। क्या यह सांस्कृति हिचक हमेशा नकारात्मक परिणाम ही पैदा करती है? या फिर कभी–कभी यह एक अभिशाप न होकर एक वरदान भी है? यह सच है कि इस प्रकार की हिचक के कारण विकास की प्रक्रिया धीमी पड जाती है, पर क्या इसके साथ यह भी सच नहीं है कि यह हमें हमारे निर्णयों के उपर फिर से सोचने का अवसर भी प्रदान करती है। क्या यह एक संयोग है कि जैसे–जैसे आधुनिक मीडिया का प्रभाव हमारे दैनिक जीवन पर अधिक से अधिक बढ़ता जा रहा है? न केवल सूचना एवं ज्ञान के बीच का फर्क धुंधला पडता जा रहा है बल्कि अन्य सभी संस्कृतियों की 'ज्ञान'' की Unique] भिन्न और विशिष्ट समझ पृष्ठिभूमि में चली गई है। प्रत्येक ब्यदबमचज की केवल और केवल वही परिभाषा या समझ हम सब पर हावी हो गई है जो ॅपापचमकपं या पदजमतदमज से हमें परोसी गई है। क्या यह केवल एक संयोग है कि एक और सभी विकासीय प्रतिमान अपनी अधिकतम ऊंचाई को छु रहे है और दूसरी और न केवल मनुष्य बल्कि निकट भविष्य में पृथ्वी पर जीवन मात्र के अस्तित्व पर खतरा उत्पन्न

हो गया है। यह खतरा मेरी दृष्टि में वह सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है जो मनुष्य निर्मित सभी रचना या रूपों के समक्ष है और मीडिया भी इन्हीं रूपों में से एक है न कि इनके बाहर। कहीं ऐसा तो नहीं कि उपलब्धियों की इस चकाचोंध में हमें पता ही नहीं चल रहा कि बहुत सी बहुमुल्य नीधियां ऐसी भी है जिनके लिए यह चकाधोंध इतनी घुटन भरी है कि उनके लिए सांस लेना भी मुश्किल हो गया है न जाने कितनी लोक भाषाएं, साहित्य, संस्कृति, जीवंत रीति रिवाज इस घुटन में अपनी अंतिम सांसे ले रहे हैं।

या यह केवल एक संयोग है कि मीडिया और पश्चिमी सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं तकनिकी वर्चस्व का रोना न केवल स्वबंस बुद्धिजीवी वरन् हसवइंस बुद्धिजीवी भी उतना ही रो रहे है? हमारे अपने देश में गांधी और आज के अमेरिका में नोम–चोमस्की की वाणी में इतनी अधिक समानता क्या केवल एक संयोग है? हममें से कुछ लोग शायद नोम चोमस्की को एक भाषाविद् के रूप में जानते है लेकिन शायद ही कुछ को पता हो कि मीडिया में उंदपचनसंजपवदए चतवचंहंदकं और विशेषकर अमरीकी वर्चस्ववादी नीतियों का जितना अधिक मुखर विश्लेषण और विरोध चोमस्की ने किया है उतना शायद ही किसी ओर समकालीन बुद्धिजीवी ने किया हो। अपनी 3 या 4 पुस्तकों एवं अनेकों च्नइसपब समबजनतमे (जिनमें से बहुत लवनजनइम पर ंअंपसंइसम है) में चोमस्की ने उें उमकपं की चवसपजपबंस मबवदवउलए उंदपचनसंजपवद और चतवचंहंदकंए उंदनबिजनतपदह व िबवदेमदज आदि विषयों का विवेचन करते हुए यह दर्शाने का प्रयास किया है कि विश्व पर किस प्रकार असली प्रभुत्व बवतचवतंजम और ेजंजम का है जो अपने निहित विशेष उद्देश्यों के लिए किस प्रकार उें उमकपं का उपयोग करते हैं। विशेषकर अमेरिका द्वारा किस प्रकार वियतनाम, इराक, ईरान, सिरिया, लिबिया, क्यूबा, ेवनजी कोरिया एवं अफगानिस्तान के साथ युद्ध के समय और सोवियत रूस के विघटन से पहले अपने नीहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए उें उमकपं का दुरूपयोग किया गया है।

इसका यह मतलब नहीं है कि यहां इन सभी की सिर्फ और सिर्फ एक नकारात्मक तस्वीर प्रस्तुत की जाए। निकट अतीत में ही भारत के कई चैमदवउमदं ऐसे है जिनकी व्याख्या और समझ बिना उें उमकपं की भूमिका के विश्लेषण के संभव नहीं है। दिल्ली में पहले अन्ना हजारे का आन्दोलन, फिर आम आदमी पार्टी का उभार, निर्भया बेंम के बाद उभरा देश व्यापी आन्दोलन यहां तक बाबा रामदेव और उनके जैसे कई अन्य धार्मिक आध्यात्मिक नेताओं का उभार पूरे तरीके से दमू उें उमकपं की उपज है! हमारे स्वतन्त्रता आन्दोलन के पीछे तत्कालीन पत्रकारिता और प्रेस का बहुत ही मजबूत एवं सार्थक रोल था। ैवबपंस – कपहपजंस उमकपं ने लोकतन्त्र को न केवल बहुआयामी चंतजपबपचंजवतल एवं पदजमतंबजपअम बनाया है बल्कि अनेक लोगों का तर्क है कि यह स्वरूप से ही च्तजपबपचंजवतल एवं प्दजमतंबजपअम होने के कारण कहीं अधिक लोकतांत्रिक है। सार रूप में, यहां सिर्फ यही कहने का प्रयास किया गया है कि दमू उमकपं द्वारा उत्पादित नवीन ज्ञान में हिस्सेदारी का प्रश्न गहराई से यूरोप और अमरीका के आर्थिक एवं सांस्कृतिक वर्चस्ववादी रवैये के साथ जुडा हुआ है। आने वाले समय में, एक समुदाय के रूप में हमारे समस्त जीवन को प्रभावित करने वाला सबसे बड़ा कारक, विज्ञान एवं तकनीकी में होने वाला परिवर्तन एवं विकास ही होगा। इसी विकास से मीडिया और अन्य सभी उपवर्गो के भविष्य की रूपरेखा निश्चित होगी। हां, यह तय कर पाना जरूर आसान नहीं है कि आने वाले समय में जो तकनीकी विकास होगा, उसका मगंबज स्वरूप क्या होगा? किन किन उपतंबसमे और ूवदकमते से अभी हमारा सामना होना बाकी है?

## मीडिया, सुचना विस्फोट का युग एवं मनुष्य की सृजनात्मकता, ग्रहणशीलता का प्रश्न

समाज की अन्तिम पक्ति के मनुष्यों तक भी भले ही किसी अन्य की पहुंच हो या न हो, मीडिया की पंहुच हर वर्ग, हर समूह तक है, इसी पंहुच के कारण आज की दुनिया एक ओर जहां सूचना के विस्फोट या बाढ़ से पटी हुई है वहीं दूसरी ओर मीडिया के कारण ही एक मनुष्य की अन्य मनुष्यों के साथ संचार की क्षमता असीमित तौर पर बढ़

गई है। सूचनाओं के इस विस्फोट के संबंध में यहां तक दावे हैं कि सन् 2000 तक हजारों सालों में कुल मिलाकर मानव सभ्यता द्वारा जितनी सूचना एकत्र की गई उतनी आज सिर्फ दो दिनों के भीतर हो रही है। (वउमजीपदह सपाम थ्पअम म्गंइलजमेश व िकंजं) एक मनुष्य पर 1 दिन में जितनी सूचनाओं की बारिश हो रही है यदि उस डाटा को इकट्ठा किया जाए तो लगभग 174 अखबार जितनी सूचना उस पर एक दिन में इवउइंतक की जाती है। इस स्थिति को लेकर संस्थागत एवं व्यक्तिगत स्तर पर अनेक प्रकार के ऐसे नए मुद्दों का सामना मनुष्य समुदाय को करना पड रहा है या करना पडेगा जो आज से पहले के समुदाय के सामने उस प्रकार से नहीं थे जैसे अब हैं। प्रश्न सिर्फ यह नहीं है कि सूचनाओं की इस बाढ़ का उपयोग राज्य, समाज, मीडिया या कार्पोरेट जगत किस प्रकार से करे वरन यह प्रश्न मनुष्य के मूल स्वरूप, उसकी गृहणीशीलता एवं उसकी सृजनात्मक क्षमता के साथ गहराई से जडा हुआ है।

यदि प्रति व्यक्ति द्वारा उत्पादित सूचना की दृष्टि से देखें तो आज से 24–25 साल पहले जहां यह केवल 2 ) चंहम तक सीमित थी वहीं आज यह प्रति व्यक्ति औसत लगभग 6 अखबारो के बराबर है।

सूचनाओं की इस बाढ़ या विस्फोट का समायोजन, समावेश एवं उनको आत्मसात कर पाना क्या मनुष्य के लिए संभव है? इस प्रकार का समावेश और सूचनाओं के आत्मसातीकरण की जटील प्रक्रिया के द्वारा ही इन सूचनाओं का ज्ञान में परिवर्तित होना संभव है। यहां इन विभिन्न कारकों के बीच के महीन अन्तर को समझना आवश्यक है कि दमू और पदवितउंजपवद में, पदवितउंजपवद और ादवूसमकहम में और पिदंससल ंदक उवेज पउचवतजंदजसल ादवूसमकहम और पदजमससपहमदबम (ज्ञान और प्रज्ञा) में क्या अन्तर है। ऐसे ज्ञान के भंडारण का क्या अंततः कोई फायदा है जो प्रज्ञा में परिवर्तित न हो? मानवीय सभ्यता के बहुआयामी सृजनशील विकास के लिए सृजनशील प्रज्ञा का होना अतिआवश्यक है, अतः सबसे अधिक बतनबपंस मुद्दा यही है कि आधुनिक और दमू उमकपं द्वारा संचारित सूचनाओं का प्रभाव एक समुदाय की सृजनात्मकता क्षमताओं के अनुकुल है या प्रतिकुल?

## मीडिया और लोकतन्त्र

लोकतन्त्र के चार स्तम्भों में से एक है मीडिया– अन्य तीन है विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका, इनको चलाने वाली गाडी है संविधान और संविधान की आत्मा है न्याय, जिसके लिए हमारी परपंरा में अधिक प्रचलित शब्द था धर्म। लेकिन लोकतन्त्र न केवल हमारे यहां बल्कि लगभग सभी जगह एक ऐसी कच्ची धाणी है जिसमें आधा तेल है और आधा पानी।

क्या हम भूल सकते हैं कि जिस ेलेजमउ में सुकरात को मृत्युदण्ड सुनाया गया था, वह लोकतन्त्र ही था। आज के दिन भी किस प्रकार ँजेंचच से फैलाई गई एक अफवाह लोकतन्त्र को भीडतन्त्र में बदल देती है। यह न्च के दादरी–बिसाहडा गांव में हुई हत्या एवं उसके बाद की घटनाओं से आज भी स्पष्ट है।

मीडिया और राजनीति के बीच संबंधों की जैसी प्रगाढता पिछले 200 वर्षो में रही है वैसी पहले कभी नहीं। जैसे जैसे नयी तकनीक से विचारों एवं सूचनाओं के आदान प्रदान का, उन सूचनाओं को महत्व प्रदान करने का एवं जनमत के निर्माण का स्वरूप और तरीका बदलेगा, वैसे वैसे ही आने वाले समय में एक और जहां मीडिया और राजनीति की प्रगाढता बढने वाली है वहीं दूसरी और इन दोनो के बीच का अर्न्तनीहित तनाव भी अपनी सीमाएं पार करने वाला है। जैसे–जैसे व्यक्तिगत मत विभिन्नता लोकतान्त्रिक समाज में बढ़ती जाएगी, वैसे वैसे ही किसी एक विचार के संबंध में लोगो को एकजुट करने में समाचार पत्रों, ेवबपंस एवं अन्य दमू उमकपं की भूमिका अधिक महत्ववपूर्ण एवं बतनबपंस होती जाएगी। खासकर लोकतान्त्रिक जन आन्दोलनों के कई मामलों में तो यहां तक कहा जा सकताहै कि बिना उमकपं के इस प्रकार के सामूहिक क्रिया कलाप की कल्पना भी संभव नहीं है।

मीडिया को मध्य में रखकर लोकतान्त्रिक व्यवस्था में मोटे तौर पर दो प्रकार के मत है जिनमें से पहला मत तो अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के अधिकार को मनुष्य के मूल एवं मौलिक अधिकार में मानने के कारण मीडिया की असीमित स्वयत्तता के पक्ष में है किन्तु लोकतान्त्रिक व्यवस्था में अनेक विचारक ऐसे भी है जिनके अनुसार क्योंकि जनता में अनेक लोग आशिक्षित भी होते है। अतः उन्हीं के कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि उन पर शिक्षित एवं अधिक परिपक्व लोगों का शासन हो ऐसे लोगों का मानना है कि एक उच्चतर उद्देश्य के लिए अर्थात् सामान्य जन के शिक्षण के लिए मीडिया को नियंत्रित एवं अनुशासित किया जाना चाहिए। इस दूसरे मत के विपक्ष में यही कहा जा सकता है कि इस प्रकार उपर से थोपा गये शिक्षण और नैतिकता का कोई गहरा लाभ नहीं है। लाभ उसी शिक्षा और नैतिकता है जो अपनी ही गहराई से, अपनी ही चेतना से स्वतः स्फुर्त हो।

लोकतांत्रिक बाजार व्यवस्था का एक ओर लक्षण भी चिन्तनीय है वह यह कि न केवल राज्य वरन् अन्य अनेक च्ंतजपबनसंत ेमबजवते भी अपने उद्देश्य एवं स्वार्थो की पूर्ति के लिए मीडिया का उपयोग करना चाहते है। यह केवल एक संयोग नहीं है कि भारत के सबसे बडे औद्योगिक घराने ही, भारत के सबसे बडे मीडिया घराने भी है।

***सह–आचार्य**
**दर्शनशास्त्र विभाग**
**राजीव गांधी राजकीय महाविद्यालय,**
**शिमला (हिमाचल प्रदेश)**